मनुष्य बना

...यगी
...६२

बा०
२०.०

...रणा

शुभ संकल्प,

प्रेम,

क्षमा,

निष्काम कर्म,

ब्रह्म...

पालन,

...क
...याल फकीर चन्द जी महाराज
मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

'मनुष्य बनो' के नियम

—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २०.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४१	जनवरी १९९२	अङ्क—४

शब्द

गाफिल शब्दावली से—

सीने में दर्द उठता है, बे दर्द के लिए।
पर मुझको तलाश है, किसी हमदर्द के लिये ।१।
दुनियाँ के जुल्म देख कर, दिल तड़फता मेरा।
दिल से निकलती है दुआ, हर फर्द के लिये ।२।
इतनी पिलाई है मुझे, पीरे मुगां ने आज।
निकली है कुछ चिंगारियाँ, अहं सर्द के लिये ।३।
मिलना खुदा का सहल है, मुर्शिद अगर मिले।
पागल हुआ हूँ उसको, पाँव की गर्द के लिये ।४।
शाह रग से है नजदीक तर, कहते हैं सब यही।
'गाफिल' पहुँचाये जो वहां, तरसूं उस मर्द के लिये ।५।

—०—

खाना खाने के तरीके

(श्री दीवानचन्द्र आहूजा)

मेरे दोस्तों ! खाना जब भी खाओ अकेले में खाओ ! शान्ति के साथ खाओ। खाना खाते समय तुम्हारे मन में कपट, क्रोध-काम, द्वेष, ईर्ष्या या और किसी प्रकार के बुरे भाव न आने पायें। एकान्त में खाना खाने का उपदेश इसलिए दिया जा रहा है की दूसरों की दृष्टि का प्रभाव तुम्हारे खाने पर न पड़े और उनकी मलीनता के दोष का संस्कार उन पर न आने पाये। आँखों से मुखतलिफ किस्म की धारायें निकला करती हैं। बुरे भावों की धारायें हमारे भोजन को जहर (विष) से भर देती हैं। और वह भोजन मुश्किल से हजम होता है। अगर हजम हो भी जाये तो जिगर और मेदे को खराब कर देता है। अगर खाते वक्त तुम्हारे इर्द-गिर्द कई आदमी हैं तो खाने में से थोड़ा-थोड़ा हिस्सा सबको बाँटकर खायें। जब वे आपके साथ बैठकर इस तरह खाना खायेंगे तो फिर उनकी दृष्टि का असर आपके भोजन पर नहीं पड़ेगा। तुम खुद खाना खाते वक्त नाम का सुमिरन करते रहो ताकि खाने का एक-एक ग्रास और पानी का एक-एक घूँट नाम के साथ तुम्हारे गले के नीचे उतरता जाये। याद रखो ! मन खाने से ही बनता है। अगर मन को जहरीला और मसमूम बनाकर द्वेष और ईर्ष्या से साथ मुँह के अन्दर लुकमा उतारते हो तो तुम्हारा मन भी जहरीला और मसमूम बनेगा।

अगर भक्ति के रस में एक एक ग्रास गले से नीचे उतरा है तो खाना भी रसीला होगा, ईसमें खास लजत होगी और तुम्हारा मन साधारण रीति से रसीला बनता जायेगा। वह अपना खास असर रखेगा। तुम्हारा जीवन सफल होता हुआ चला जालेगा। न कुछ

करना है न धरना है यही सहज योग है। इसमें बड़ी आसानी के साथ सुमिरण, ध्यान और भजन होता रहता है।

'एक किस्सा

प्रेमियो सुनो ! एक राजा था। जब तवाक से ढका हुआ खाना उसके सामने रखा जाता था, सारे दरबारी उसके सामने बैठे रहते थे। वे शौक से खाना खाता जाता था। कुछ समय के बाद उसके पेट में दर्द हो जाया करता था, उसको ऐसा मालूम होता था जैसे पेट में कोई चाकू धँसा रहा हो। राजा की हालत रोज-बरोज बद से बदत्र होती जाती थी। वैद्य, डाक्टर सब सिर मारते थे मगर नतीजा बेसूद। किसी की दवा से आराम न आता था। बेशुमार धन खर्च हुआ मगर पेट का दर्द उसी तरह कायम रहा।

इतफाक से राजा के यहाँ एक साधु आया। राजा ने साधू से अपने पेट के दर्द की शिकायत की। मैं तरह-तरह की दवाईयों का प्रयोग कर चुका हूं मगर मेरे पेट की तकलीफ दूर नहीं होती कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे मेरा पेट दर्द ठीक हो जाय। साधू ने सारा हाल सुनकर राजा से कहा, "मेरे साथ बैठकर खाना खाईये।"

भोजन के समय पर ढका हुआ भोजन साधू और राजा के सामने रखा गया। साधू की नजर उस पर पड़ी सारे दरबारी सामने बैठे थे उन सबके सामने बैठकर राजा में अपना भोजन खाया। साधू ने कहा, "महाराज ! आप तो जहर खाते हैं। आपका भोजन अमृत नहीं बनता। यही कारण है कि आप बीमार रहते हैं। राजा ने पूछा, "कैसे ? साधू ने उत्तर दिया दूसरे दिन मैं समझा दूँगा।

दूसरे दिन जब भोजन के समय पर फिर ढका हुआ भोजन आया तो तमाम दरबारियों की दृष्टि उस भोजन पर जमी हुई थी। साधु की आज्ञा से 'खवान पोश' हटाया गया। देखते क्या हैं कि राजा की थाली कनखजूरों, बिच्छूओं और जहरीले कीड़ों से भरी पड़ी थी। राजा यह कौतक देखकर डरा। साधु ने अपनी जवान खोली, यह भोजन आप खाते हैं। जितने आदमी आपके सामने बैठे हैं इनकी दृष्टि का प्रभाव आपके खाने पर पड़ता है। वह अपने मन में कहते हैं कि राजा अच्छे-अच्छे पदार्थ खाता है। हमें ऐसा भोजन प्राप्त नहीं होता है। उनकी यह भावना उनकी आँखों से निकलकर आपके खाने पर पड़ती है और उसे विषैला बना देती है। इस बीमारी का और कोई इलाज नहीं। केवल एक ही इलाज है कि आगे के लिये आप एकान्त में भोजन किया करें। ऐसा अभ्यास करने से आपका सारा दुःख-दर्द दूर हो जायेगा।

बिना किसी ही दवा दारू के राजा शीघ्र ही स्वस्थ हो गया। राजा खुश होकर साधू को इनाम देने लगा। साधू ने कहा, "अपना इनाम अपने पास रखिये, मुझे उसकी जरूरत नहीं है।" मेरा इनाम केवल -'मालिक का नाम है और वह स्वयं ही मुझे प्राप्त है।"

इसी कारण से किसी अनुभवी वृद्ध ने लिखा है :—

'भजन' 'भोजन' और 'भोग' सदा ही एकान्त में होना चाहिये'

धन्यवाद

100/- श्री लक्ष्मनराव जी करीम नगर, 100/- रु० ओमप्रकाश लोहचाव आनरेरी लेफ्टीनेंट, 101/- नंदकिशोर जी इटावा, 51/- जगदीशचन्द्र पूनमचन्द्र इटावा, 201/- रु० देवनारायन बाबूसिंह इटावा एवं 1100/- रु० चण्डीगढ़ सभा ने "मनुष्य बनो" की सहायतार्थ भेजे हैं। हम सभी के हृदय से आभारी हैं। जो हमें समय २ पर सहायता देकर इस कार्य को करने में अपना महान सहयोग दे रहे हैं।

—व्यवस्थापक

॥ मनुष्य बनो ॥

राधास्वामी योग

छटवाँ भाग

योग साधन की विधि की व्याख्या

शब्द योग

बचन १२७

उद्देश्य

उपनिषद् का कथन है कि यह नूर (ज्योति), जीवन, समस्त इन्द्रियाँ और अस्तित्व हमारी आत्माओं में है। हम में, हमारे अन्दर हर हालतें मौजूद है। हमारे शरीर में उनके स्थान नियत हैं। यह सब स्थान सुप्त अवस्था में पड़े हुये है। यदि साधन करके उनको गर्मी पहुँचाई जाय और वह खुल जायें, तो उनकी ग्रन्थियों के खुल जाने से हम में अत्यन्त शक्ति आ जाती है।

एक वृहत् सर्व व्यापक तत्व है और हम उसके अंश हैं, जैसे किरण सूर्य की और बुन्द समुद्र की अंश है और रेत का कण रेगिस्तान का अंश है उसी का जानना, समझना, उसकी भक्ति करना और उससे मिलकर एक हो रहना हमारे जीवन का उद्देश्य है।

॥ मनुष्य बनो ॥

उपनिषद् का कथन है—उसका जानना सच और सत्य होता है उसका न जानना मृत्यु के बराबरी है।

फिर हम उसको कैसे जानें ? "भूतेषु भूतेषु विचिन्तया। उसका हर वस्तु और सबमें साक्षात्कार कर लेने से।"

यही कर्म का उद्देश्य है, यही भक्ति का उद्देश्य है और यही ज्ञान का उद्देश्य है। कर्म,उपासना और ज्ञान का प्रयोजन केवल यही है।

जीव के जीवपने में, ईश्वर के ईशपने में और ब्रह्म के ब्रह्मपने में वही है। हमारे शरीर के शरीरपने में, हमारे मन के मनपने में, हमारी आत्मा के आत्मपने में, वही असली तत्व व्यापक हैं और अंग संग है। उसके सिवा और कुछ भी नहीं है और न हो सकता है।

वही सहस दल कँवल का जोति निरंजन हैं, वही त्रिकुटी का प्रणव ओ३म् है वही सुन्न महासुन्न और दसवें द्वार की समाधि की अवस्था है। वही भँवर गुफा का सोहंग पुरुष और वही सत्य लोक का सत्य पद है आदि आदि। सार बचन राधास्वामी नजम के पृष्ठों में इसी एकता का वर्णन पूर्ण रूपेण है।

जो कुछ है वह है। उसका जान लेना हमारा कर्त्तव्य है।

पिंड को पिंडी मन की सहायता से समझो बूझो। पिंडी मन की सहायता लेकर अपने अन्दर के ब्रह्मांड में चलो। पिंडी मन को ब्रह्मांडी मन से मिला दो ताकि इस पिंडी मन से ब्रह्मांडी गुण पैदा हों। यह ब्रह्मांडी मन ही ओ३म् है। इसकी सहायता लेकर फिर ऊपर के मंडलों की सैर करो और इन मंडलों की जानकारी प्राप्त करो और तुम उसी एक के तेज को हर जगह व्यापक पाओगे। यह सर्वज्ञता है। जब तक यह नहीं आती, सर्वज्ञ की जानकारी प्राप्त नहीं होती।

।। मनुष्य बनो ।।

चाहे मिलते जुलते उदाहरणों से किसी अंश तक समझ बूझ आ जाये, लेकिन यह ज्ञान नहीं है। ज्ञान कुछ और ही वस्तु है और वह बिना उपासना व संयम के हाथ नहीं आता।

वही सब कुछ है। मृत्यु और जीवन दोनों उसी की छाया हैं।

मृत्यु का भय और जीवन की इच्छा क्यों हो? मृत्यु और जीवन अन्त में हैं क्या जिनका भय या जिनकी इच्छा की जाये? दोनों समान हैं। दोनों आवश्यक हैं। द्वन्द के स्थान पर दोनों का ही महत्व है। जीवन का अगर प्यार है तो मृत्यु का भी प्यार होना चाहिये। जीवन और मृत्यु दोनों ही को उसके प्यार से ढक दो, ताकि द्वन्दपना बिल्कुल जाता रहे और दोनों की असलियत समझ में आ जाये। उस समय भय और आशा रूपी दोनों भूत भाग जायेंगे। जीवन यदि आता है तो उसे नमस्कार है। यदि जाता हो तो उसे नमस्कार है। जो मृत्यु है वही जीवन है। जो जीवन है वही मृत्यु है। उपनिषद् का एक श्लोक है जिसका अर्थ है :— आशा ही से सब कुछ पैदा है। प्राण ही से सब कुछ जीवित है। प्राण ही विराट है।

इस ख्याल को लेकर निर्भय होकर उद्देश्य की प्राप्ति करो। संदेह क्यों किया जाये। हम प्राण हैं। प्राण से प्राण की खोज करनी है। हम सत् हैं। सत् से सत्य की तलाश करनी है और यह क्या कठिन है। कठिनता और असम्भवता के ख्याल को दिल से हमेशा के लिये दूर करदो। केवल खोज के विचार को पक्का करते हुये पंथ या राह में आ जाओ। पंथ पुस्तकों में नहीं है। तुममें और तुम्हारे ही अन्दर है। चलो और जैसा कि कठ उपनिषद् कहती है—"उठो, जागो और चलो और जब तक इष्ट पद पर न पहुंच जाओ, ठहरने और आराम

लेने की ओर ध्यान तक न दो। इस तरह अमल करने से तुम अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लोगे।

जो कदम आगे की तरफ बढ़ेगा, वह मस्ती और आनन्द प्राप्त करता हुआ होगा। लोक परलोक दोनों ही का सुधार होगा। एक हाथ सोने का एक दूसरा हाथ चाँदी का। इसमें तुम्हारी हानि ही क्या है? जो इस राह में आता है, वह अमृत हो जाता है। हाँ, अमृत हो जाता है। आनन्द की मूर्ति बन जाता है।

उपनिषद् का कथन है—"वह सर्वव्यापक सबमें मौजूद है और इस कारण वह हर प्राणी की हर अवस्था का कल्याण कारी है। इसमें कोई संशय नहीं है।

राधास्वामी नाम धराया राधास्वामी।
राधास्वामी रूप दिखाया राधास्वामी॥

जो नाम और रूप है वही तू है। वही विराट है, क्योंकि विराट सबसे बड़े को कहते हैं।

राधास्वामी भान किरन राधास्वामी।
राधास्वामी सिन्ध बुन्द राधास्वामी॥

वह सत्यता का स्वरूप ही है जो सूर्य्य और सूर्य्य की किरणों में झलकता है। वह असलियत है जो समुद्र और बुन्द दोनों में लहरा रही है।

बचन १२८

शब्द अभ्यास

राधास्वामी योग ऐसा योग है जिसका समझना सरल है, साधन सरल है और शीघ्र सफल होता है। इसका कारण यह है कि वह केवल शब्द अभ्यास है। शब्द से सरल कोई वस्तु कोई उपाय और कोई काम नहीं है। बातचीत करते हुये

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

मुसाफिर सहूलता से अपना रास्ता काट लेते हैं। बातचीत करते करते हाथ का काम इस तरह सहज में समाप्त हो जाता है कि पता भी नहीं लगता। यह माधारण बातें हैं। इनके अतिरिक्त बातचीत में जो मन को लगाने, आकर्षण करने तथा प्रसन्न करने की शक्ति है यह सब जानते। वार्तालाप तवज्जह (चित्तवृत्ति) को तुरंत अपनी ओर खेंच लेता है और चित्तवृत्ति का एकाग्र होना योग है। चित्त की वृत्तियों के चंचलपने का दूर होना ही योग कहलाता है। और यह क्रियात्मक रूप में हम अपने कारोबार में देखते है। बच्चे बातचीत करते आये हैं। और बुढ़ापे में भी बातचीत का स्वभाव रहता है। यह प्रकृति का स्वभाव है। बातचीत से ही जीवन भली प्रकार प्रगट होता है। यह सब जानते हैं।

बातचीत शब्द का व्यौहार है। केवल शब्द द्वारा ही जीव इन अपने आन्तरिक भावों के झुकाव को प्रगट करते हैं। बोलने ही को जीवन का सार बताया गया है। बच्चा दुनियाँ में होते ही शब्द करता हैं। अगर वह शब्द न करे तो वह मुर्दा समझा जाता है। आदमी बोलता पुरुष कहलाता है। यहाँ हर वस्तु बोलती है। चाहे तुम इसे मानो या न मानों। फलों कीं कलियां चटकती हैं यह बोलना ही तो है। कुदरत के हर काम में गति है। गति शब्द से कभी रहित नहीं है। यहाँ रेत के कण कण की गति में नियमित रूप से सुरीला शब्द होता रहता है। वायु सन सन करती है। जल चुल चुल शब्द करता है। अग्नि भक भक शब्द करती है। जिस वस्तु को तुम सुस्त और जड़ देखो तो उसे भी सुस्ती और जड़ता में शब्द करते हुते पाओगे। शब्द से रहित कोई वस्तु नहीं है। मेज और कुर्सियाँ कमरे के अन्दर सजी हुई हैं। तुम उन्हें खामोश समझते हो मगर हम ऐसा नहीं समझते,

क्योंकि उनके अन्तरीय और बाहरी कण सब हर समय गति में रहते हैं। यदि गति न होती तो मेज और कुर्सियाँ की हालत कैसे बदलती ? आज कुछ हैं कल कुछ हो जाती हैं और परसों में सुकुड़कर मिट्टी बन जाती हैं। यह केवल कणों की गति ही का परिणाम है। बर्फ में गति है। ठोस से ठोस चीज में गति है और सब गति करती हुई शब्द करती रहती हैं।

इसी कारण से समस्त बुद्धिमान, फिलोस्फर और योगियों ने इसी शब्द को असली सार और प्रकृति का असली तत्व माना है। जो है वह यही है। यही चेतन का लक्षण है। यही जीवन की शोभा है। इसी से सब कुछ पैदा होता है और इसी में सब कुछ समा जाता है।

शब्द गुप्त तब रहा अनाम। शब्द प्रगट तब धरिया नाम।

यही नाम है और यही अनाम है। यही रूप है। यही अरूप है। यही आकार है। यही निराकार है। यही सगुण है। यही निर्गुण है। यही त्रिगुणात्मक है। यही गुणातीत है। तात्पर्य यह कि जो कुछ है वह यही है।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि शब्द आकाश का गुण है और शब्द ही आकाश की जान है और इसमें कोई संदेह नहीं है। आकाश तत्व जो सबसे पहला महाभूत समझा जाता है, वह इसी शब्द से पैदा हुआ है। आकाश की उत्पत्ति शब्द ही से होती है और यही आकाश अपनी बारी पर गति मान होकर शब्द को प्रगट करता हुआ वायु, अग्नि, जल और मिट्टी को पैदा करता है। इन सबका आदि और अन्त शब्द ही है।

तुम पूछोगे—"क्या आत्मा भी शब्द है ?" हम जवाब देंगे "हाँ आत्मा भी शब्द है।" यह सुनकर तुमको बड़ा आश्चर्य होगा। लेकिन आत्मा है क्या ? इस पर बहुत थोड़े विचार करते हैं। संस्कृत के कोष यास्कमुनि के 'निरुक्त'

में इसका पाठ पढ़ो तो वह तुमको इसका अर्थ बतायेगा। आत्मा दो शब्दों से निकला है, अत: (गति करना) और मनन (सोचना)। देखो यहाँ भी गति और सोचना है। गति और विचार से रहित तुम्हारा आत्मा भी नहीं है। गति और विचार शब्द में है। फिर यह आत्मा 'निरुक्त' (ग्रन्थ) के अर्थ अनुसार शब्द सिद्ध हुआ।

ब्रह्म शब्द है, परब्रह्म शब्द है सोहंग शब्द है, सत शब्द है और जब शब्द ही सबकी जान हुआ, तो फिर यह सब के सब शब्द क्यों न होंगे

सम्भव है कि तुम विचार करते हुये शब्द को आकाश की चोटी, आकाश की जान और आकाश का गुण मान कर यह स्वीकार कर लो कि शब्द तत्व तो है मगर इसके सिवा आत्मा, कोई अलग वस्तु है। अगर ऐसा तुम्हारा ख्याल है तो हम तुमसे पूछेंगे कि तुम बताओ तो सही कि तुम आत्मा किसे कहते हो। तुम कहोगे कि आत्मा वह है जिसमें छः गुण हैं। राग, द्वेष, सुख, दुख, इच्छा, ज्ञान। यह न्याय शास्त्र का कथन है। बहुत अच्छा। अब तुम आप ही सोचे कि इन गुणों में कौनसा गुण ऐसा है जो शब्द से रहित है। देखो पक्षपात और हठधर्मी में न पड़ो। असलियत पर असलियत की दृष्टि से विचार करो ताकि किसी तरह का मन में भ्रम न हो। जो कुछ तुमको कहना सुनना है कहते सुनते चलो। तर्क वितर्क करो, इसमें हानि नहीं लेकिन संकीर्ण हृदय और हठी न बनो, न पक्षपात करो और हम तुमको सरलता से समझा देंगे। तुम जो कुछ कहोगे, सोचोगे, समझोगे, वह शब्द ही होगा और अन्त में शब्द ही में मन, बुद्धि और अहंकार का ठहराव होगा। उत्तर मीमांसा और पूर्व मीमाँसा (वेदान्त) योग और सांख्य, न्याय और वैशेषिक यह षट दर्शन हैं

इन्हीं पर बहस करो, और अन्त में बहस शब्द ही पर आकर समाप्त होगी। इनके सिवा और भी जितने दर्शन जैसे कि व्याकरण आदि हैं, वह भी सब शब्द ही की व्याख्या करते हैं हाँ, इतना अन्तर अवश्य है कि खुले शब्दों में राधास्वामी मत की तरह कथन नहीं करते, संकेतों से काम लेते हैं क्योंकि उन्होंने एक एक विषय को दृष्टि में रखकर वर्णन किया है।

राधास्वामी मत चूंकि विश्व व्यापी मार्ग और विश्व-व्यापी दर्शन (फिलोसफी) है, यह तमाम दर्शनों की शाखाओं की पूरी करता है। उलझता एक से भी नहीं और न किसी के खंडन से सम्बन्ध रखता है। यह हाथी का पाँव है। हाथी के पाँव में सबका पांव रहता है। राधास्वामी मत के पेट में तमाम मत मतांतरों के ख्यालात रहते हैं। यह ऐसा पूर्ण मार्ग है।

वेद कहते हैं शब्द ब्रह्म, प्रणव शब्द। इन सब शब्दों के अन्दर वही संकेत मौजूद है जो हम तुमको दिखाते चले आ रहे हैं।

योग कई प्रकार के हैं–प्राण योग, ध्यान योग, ज्ञान योग, भक्ति योग, कर्म योग, हठ योग आदि आदि। यह प्राण क्या है? शब्द ही का तो स्थूल रूप है। यह शब्द प्राणों का प्राण, ध्यान का ध्यान, ज्ञान का ज्ञान, भक्ति की भक्ति, कर्म का कर्म, तात्पर्य कि यह सब का सार है। इसी दृष्टि से राधास्वामी मत ने इस सार को लेकर केवल शब्द योग की कमाई की आज्ञा दी हैं कि मन सरलता से चारों ओर से हटकर उसमें लगे और सरलता से अपना काम बनाले। दूसरे सब साधन इस साधन से कठिन और असाध्य हैं। दूसरे विद्वानों ने साधन सम्पन्न न होने के कारण इनको व्यर्थ हौवा बना रखा है जिसकी ने वह बेकार हो रहे हैं। राधास्वामी मत कहता है कि

सबकी ओर से अपनी चित्तवृत्ति (तवज्जह) को हटा लो। केवल शब्द योग के अभ्यास में लगो और उसका फल कुछ ही दिनों में तुम स्वयं देख लोगे।

कहावत है—'हल्दी लगै न फिटकरी और रंग चोखा आवै'', यह ऐसा ही साधन है और अगर तुम जरा भी हमारी बातों की तरफ ध्यान दोगे तो उसको ज्यों का त्यों सही और सच्चा मान लोगे।

क्या तुम नहीं देखते कि सितार, तबला मृदंग, सारंगी और बीन बांसरी की आवाज सुनकर तुम कैसे मोहित हो जाते हो। इसका कारण और कुछ नहीं है। यह शब्द के साज हैं और शब्द हैं। शब्द में विशेष प्रकार का चुम्बकीय आकर्षण रहता है जो मन को अपनी ओर खेंच लेता है और तुम अपने आप में नहीं रहते। अगर तुममें योग्यता और शक्ति हो तो इसको सच्चा मान लो। चाहे उसको सचाई से इंकार करो, लेकिन इंकार कैसे हो सकता है। एक बच्चा तक इसे जानता है। बीन की आवाज पर हिरन मुग्ध हो जाता है सपेरे की तोमड़ी के शब्द पर साँप नाचने लगता है। सारंगी और रुबाब को सुनकर घोड़े गति रहित हो जाते हैं। मनुष्य तो मनुष्य है, बाजों का शब्द पशुओं को भी समाहत बना देता है। उनकी समाधि लगने लगती है। राग और गाना हर रोग का इलाज है। कुदरत के समस्त जीव जन्तु इसके असर में आ जाते हैं। शब्द बिद्या विचित्र प्रकार की चीज है और उसका कारण यही है कि शब्द सबका सार और सबकी जान है। इससे सम्बन्ध रखना मानवता का रूप है। कोई इसके प्रभाव से खाली नहीं रहता।

यह बाह्य की रचना में तुम देखते हो। इसी तरह अगर अन्तर मुखी वृति का साधन किया जायगा और अंतरीय शब्द

के सुनने का अभ्यास किया जायगा तो कैसे सम्भव है कि वह प्रभावहीन रहेगा। बाहर के शब्द फिर भी स्थूल हैं अन्दर के शब्द सूक्ष्म हैं। स्थूल से सूक्ष्म में अधिक शक्ति होती है। और जब बाहरी और स्थूल शब्दों के प्रभाव का यह हाल है तो अन्तर में अंदरूनी सूक्ष्म शब्दों की क्या दशा होगी; वह कितने मनोरंजक और चित्ताकर्षक होंगे और कितनी सरलता से चित की बिखरी हुई वृत्तियों के समेटने में सहायक होंगे।

शब्द का अभ्यास हर मार्ग में था और अब भी है लेकिन लोगों को ज्ञात नहीं है। पातंजलि ऋषि के योग में उसका संकेत है। उपनिषदों में उसका दबे शब्दों में वर्णन आता है। कोई हमसे पूछे तो हम बतायें। बिना पूछे हम क्यों बतायें। बिना पूछे गछे हुये कोई किसी को क्या कहे। यह सब उसकी खबर तो देते हैं लेकिन गुप्त रूप से। राधास्वामी मत उसकी व्याख्या करता हुआ इस समय के जिज्ञासुओं को शब्द के साधन की हिदायत करता है।

वचन १२६

भिन्न भिन्न प्रकार के शब्द

शब्द की विशेषता के सम्बन्ध में कुछ पहले बचन में कहा गया है लेकिन याद रखना चाहिये कि इस रचना में कई तरह के शब्द होते हैं। जैसे आत्मिक शब्द, मानसिक (सूक्ष्म) शब्द स्थूल शब्द। जो शब्द की आत्मा से धार रूप में निकलता है वह आत्मिक, जो मन से निकले वह मानसिक और जो ब्रह्मांड में पार्थबिक (भौतिक) वस्तुओं से निकले वह स्थूल शब्द है।

इनके प्रभावों में अन्तर होता है। मानसिक और भौतिक (१) शब्द का सम्बन्ध बाह्य है और आत्मिक शब्द का

सम्बन्ध आंतरिक शब्द से है। आत्मिक शब्द तो अन्तरमुखी वृति हैं और दूसरे शब्द बहिर्मुखी कर देते हैं। इसका कारण यह है कि शब्द में यद्यपि आकर्षण शक्ति तो है लेकिन इनका आकर्षण बाह होता है क्योंकि उनकी व्यवस्था बाहर है और आत्मिक शब्द का आकषण अन्तर की ओर होता है क्योंकि वह शब्द अन्तर में है।

बाह्य शब्द के प्रभाव को तो सब जानते हैं लेकिन अंतरीय शब्द का ज्ञान उस समय तक होना कठिन है जब तक अंतर में साधन न किया जाय। जो थोड़ा बहुत भी अभ्यास करते हैं उनको समझाने बुझाने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है, क्यों-कि वह आंतरिक साधन करते रहने से स्वयं ही जानते हैं कि जहाँ से शब्द आता है। आदमी की चित्तवृति (तवज्जह) स्वयं उस स्थान की ओर खिंच जाती है, लेकिन हमको यहाँ ऐसे आदमियों को भी समझाना है जो इस विषय में अनभिज्ञ हैं। उनको हम बाह्य शब्दों के प्रभाव की ओर ध्यान दिलाकर अनुमान की सहायता से समझाने का प्रयत्न करते हैं।

तुम देखो कि कहीं घटा, शंख, मृदंग, बाँसरी या बीन बज रही है। जब तुम बाहर में इनको सुनोगे तो चित्तवृत्ति स्वयं उस स्थान की ओर जायगी जहाँ से यह शब्द निकल रहा है। और अगर तुम उस विशेष बाजे के शब्द को सुनते हुये उस तरफ चले चलो जहाँ से वह आ रहा है तो वहाँ पहुँच जाओगे। यह सही और सच्ची बात है। शब्द बाहर से आ रहा है और तुमको बाहर ही उसका ज्ञान होगा और बाहर ही उसका तमाशा देखोगे। इसी तरह अन्तरीय शब्द या अनावत बाणी जिसका अन्तर में साधन किया जाता है, किसी अन्तरीय स्थान या केन्द्र से निकला करती है और जब तुम उसे सुनने लगोगे तो आवश्यक है कि तुम अन्तर की

और झुकोगे।

मनुष्य के बाहर हर जगह हजारों ही नहीं किन्तु अनगिनत प्रकार के शब्द होते रहते है, लेकिन सारा सम्बन्ध केवल उन शब्दों से रहता है जिनसे व्यौहार या जीवन के दैनिक कारोबार में सहायता मिला करती है। यही दशा अन्तरीय शब्द की भी है। अन्तर में भी अनगिनत प्रकार के शब्द होते रहते हैं, और बाहरी शब्द की तरह हमको अन्तर में केवल उन विशेष धुनों या शब्दों को छांटकर चलना होता है जिनकी शिक्षा गुरू देते हैं और उन्हीं के साधन से लाभ होता है। बाकी शब्दों को छोड़ देना पड़ता है। अगर यह सावधानी न की जाये तो फिर पंथाई भ्रम में पड़ जाता है। और अगर वह बहक गया तो फिर सँभलना कठिन हो जाता है।

प्रायः लोग अनापशनाप बिना समझे बूझे अन्तर में शब्द का अभ्यास करते हैं। परिणाम यह होता है कि राह से भटक जाते हैं और उनका परिश्रम निष्फल हो जाता है। हमारे अन्दर हजारों ही तरह की नस और नाड़िया हैं और उनके द्वारा विभिन्न रूपों में जीवन की धार आती है और उस धार की गति के सिलसिले में शब्द हुआ करता है।

राधास्वामी मत में बताया है कि इन तमाम नस और नाड़ियों में तीन नाड़ियाँ मुख्य हैं जिनका नाम इंगला, पिंगला और सुषुम्ना है। यह मूल चक्र या गुदा चक्र से चलती हैं। और तीसरे तिल में पहुँच कर उनकी वैसी शकल हो जाती है, जैसी कि बैष्णवों के माथे के तिलक में हम देखते हैं। इंगला पिंगला दायें बायें हैं। इनको छोड़ देना होता है। केवल बीच वाली नाड़ी सुषुम्ना में ठहर कर उसी के विभिन्न स्थान या चक्र के शब्द का साधन करना पड़ता है। इंगला पिंगला की राह इससे ओर गई है। सुषुम्ना नाड़ी सीधी चोटी के स्थान

तक गई है और उसी ओर सुरत को ले जाना चाहिये हिन्दुओं में चोटी का रिवाज इसी कारण से है। यह तमाम नस और नाड़ियों का एक केन्द्र है। इसका सम्बन्ध सबसे है, क्योंकि शक्ति यहाँ ही से आती है। लेकिन बेठौर ठिकाने का साधन करने का परिणाम लाभदायक नहीं होता सीधी राह को छोड़कर कोई टेड़ी राह क्यों चले।

हमारे मस्तिष्क में इसी सुषम्ना नाड़ी की सीध में कई केन्द्र है मगर इनमें पाँच मुख्य हैं और पाँच केन्द्रों के पाँच ही शब्दों के साधन से सम्बन्ध रखना पड़ता है। शेष को छोड़ दिया जाता है।

इन पांचों स्थानों में पाँच प्रकार का शब्द और पांच प्रकार का प्रकाश रहता है। राधास्वामी मत में इन सबकी व्याख्या कर दी जाती है। सार बचन राधास्वामी नजम में कहा गया है :—

'पाँच नाम का सुमिरन करो"

पाँच गुरू नानक साहब ने भी कहा :—

वचन १३०

शब्द का प्रभाव

हर शब्द में विशेष प्रकार का प्रभाव होता है। यह प्रभाव बाहर के शब्द में भी है और अन्तर के शब्द में भी है। इसका कारण यह है कि हर प्रकार का शब्द विशेष स्थान से बिशेष भावों को लिये हुये आता है और उस स्थान की सूक्ष्म या स्थूल शक्ति उसमें रहती है जो आदमी इस दृष्टि से जिस स्थान पर उसके विशेष शब्द का साधन करेगा, उसमें उसी तरह के सूक्ष्म या स्थूल प्रभाव पैदा होंगे और यह प्रभाव

उसके जीवन को बदल देंगे।

शब्द केवल उनके प्रगट करने का साधन ही नहीं है किन्तु मगर यही सब कुछ नहीं है। प्रायः लोग इस स्थान का वह जीवन के भिन्न भिन्न भावों का प्राकट्य है। जीवन का शब्द एक होता है और सिलसिले में चलता है। जीवन के भावों के शब्द विभिन्न प्रकार के और बहुत से होते हैं। तुम हँसते हो, हँसी का शब्द और है। तुम रोते हो, रोने का शब्द और है। तुम क्रोध करते हो, क्रोध करने का शब्द एक विशेष प्रकार है। तुम दया और सहानुभूति करना चाहते ही तो दया और सहानुभूति के शब्द की सूरत और ही तरह की होती है। इसी तरह यदि एक ही भाव के एक एक शब्द पर विचार करते चलो तो इसी शब्द के अन्दर आश्चर्यजनक दशाये दिखाई आने लगेंगी।

शब्द औषधि है। शब्द रोग है। शब्द से आदमी मर जाते हैं, उनका कलेजा फट जाता है। शब्द ही जीवन प्रदान करता है और घाव पर मरहम लगता है। ज्ञान का शब्द जहाज बनकर भव सागर से पार लगा देता है। अज्ञान का शब्द संसार के दुखों के बंधन में फँसा देता है। काम, क्रोध, लोभ मोह और अहंकार शब्द से प्रगट होते हैं और शब्द ही सबका आधार बना रहता है। बुराई, भलाई सब कुछ शब्द में है। और यही हर जगह विभिन्न दृश्य दिखाता रहता है।

कबीर साहब की वाणी है :—

(१) शब्द ही मारे बन गये, शब्द ही तजिया राज।
जो यह शब्द विवेकिया, ता का सरिया आज ॥

(२) एक शब्द सुखरास है, एक शब्द दुखरास।
एक शब्द बँधन कटे, एक शब्द गले फाँस ॥

(३) शब्द गुरू को कीजिये, बहुतक गुरू लबार।
अपने अपने लाभ को, ठौर ठौर बटमार ॥

जो शब्द जहाँ से, जिस स्थान से, जिस आदमी से निकलता है उसी स्थान और उसी आदमी के प्रभावों को अपने साथ रखता है, आदमी ही पर क्या निर्भर है, हर पशु और जड़ वस्तु के शब्द पृथक पृथक होते हैं। जो जैसा है। वसा शब्द करता है और उसी तरह का प्रभाव उससे निकलता है। यह न समझो कि जानदार ही शब्द करते हैं, बल्कि निर्जीव कण कण और बूंद बूंद से शब्द होता है। और यह शब्द ही के प्राकट्य के विभिन्न दृश्य हैं। शब्द व्यापक तत्व है। जहाँ जिस वस्तु के द्वारा शब्द होता है, उसी तरह का शब्द उससे निकलता है।

शब्द कानून है। शब्द कुदरत की शक्ति है। शब्द ही परम तत्व है। जो ब्रह्म का ब्रह्म कहलाया जाता है, वह शब्द सी है। जो प्राणों का भी हर प्राण बना रहता है, वह शब्द ही है। शब्द ही सगुण, निर्गुण, साकार और निराकार है और शब्द ही स्थूल, सूक्ष्म और कारण है। इसी कारण राधा स्वामी मत ने इस परमतत्व को छाँटकर सिर्फ शब्द योग द्वारा निर्वाण और धुरपद की प्राप्ति की युक्ति बताई है जिसको हम ईश्वर, परमेश्वर, खुदा और आदि कारण कहते हैं, वह शब्द ही हैं, क्योंकि यह ईश्वर, परमेश्वर, खुदा और आदि कारण तक की जान है। यही सबके अंदर रहने वाला अन्तर्यामी अंतरआत्मा है। लोग विचार नहीं करते और न सोचते हैं वरना इस शब्द की असलियत की समझ आ जाये।

ब्रह्म, परब्रह्म, शुद्ध ब्रह्म, ईश्वर और परमेश्बर आदि के अन्दर यह शब्द कानून है, मनुष्य में चूंकि मन और बुद्धि उचित रूप में वृद्धि को प्राप्त होते है, यही शब्द कानून बना हुआ विभिन्न रूपों का तमाशा दिखाता है। पशुओं में चूंकि की गढ़त इतनी नहीं होती, वह केवल मन बुद्धि

के प्रारम्भिक भाव को प्रगट करते हैं। मन बुद्धि से मिलकर यही शब्द अत्यन्त पवित्र विचार और मानसिक भावों के बनाने का पक्का यंत्र बन जाता है। वह शब्द ही है जो कवि की ऊँची उड़ान में सुन्दर विचार बनकर उडता रहता है। यह शब्द ही है जो ऋषियों के उच्च विचार के दर्पण में शील, धर्म, असली निज स्वरूप के प्रतिविम्ब को दिखाता रहता है। उपदेशक जब अपने हृदय को किसी विचार से प्रभावित करके व्याख्यान देने लगता है तो सुनने वाली के हृदय विशेष प्रकार के जोश से भर जाते हैं। कभी वह अपने भाषण से रुलाता है, कभी हँसाता है, कभी दिल को भड़का देता हैं और कभी साहसहीन कर देता है।

अब सोचो, जब इंसान अपने बाहरी शब्दों से हृदय पर केवल शब्द के द्वारा विशेष विशेष प्रभाव पैदा कर सकता है, तो आत्मिक मंडल में जहाँ यह शब्द व्यापक बना हुआ है कैसा शक्तिशाली होगा। प्रत्येक मंडल या स्थान और प्रत्येक आत्मिक स्थानों के शब्द के प्रभाव बिशेष रूप से शक्तिशाली होते हैं। जो मनुष्य इनके प्रभाव को अपने अन्दर बराबर लिया करता है और उसी का साधन किया करता है, उसका क्या हाल होगा, क्योंकि वह उनके प्रभाव से कभी खाली नहीं रह सकता है।

इस स्थूल जगत में यह शब्द इत्गीत अर्थात् इधर का राग कहलाता है और आत्मिक मंडल में वह उद्गीत यानी उधर का राग कहलाता है। ओ३म् इद् गीत है। सोहग उद् गीत है

इसी शब्द में उसकी असलियस के गुण मौजूद रहते हैं। बंदूक चली, गोली निशान पर बैठी और साथ ही बारूद सा गुबार उड़ा और उसकी गंध फैली, क्योंकि यह सब उसमें, उसके साथ और उसके अन्दर मौजूद रहते हैं। शेष अगले अंक में

सत्संग परमसन्त

हजूर फकीरचन्द जी महाराज

सर्वव्यापकता

(मानवता मन्दिर, होशियारपुर ९-६-७०)

दाता दयाल (महर्षि शिव) के यह शब्द पढ़े गये :—

जो जहाँ शामिल है सब हरकात और सकनात में।
यह समझ लेना वह शामिल है तुम्हारी जात में॥
जर्रा-जर्रा कतरा-कतरा में हुआ है वह मुहीत।
वह नफी में भी है पिनहा जाहिर है वह असबात में॥
दूर से है दूर और नजदीक से नजदीक तर।
तुम में है हरकत उसी की शामिल तुम्हारी बात में॥
अक्ल से और दिल से कब कोई पता पाने लगा।
लाख कोशिश करने पर भी आता नहीं है हाथ में॥

जो हुआ मुहताज गैरों का वह कब इन्सान है।
वह है हैवानों से बदतर क्योंकि वह नादान है॥
आदमी में आदमियत चाहिये यह है उसूल।
आदमियत से जो हो खाली वह बेसरो सामान है॥
उसमें हिम्मत हौसला हो अज्म में साबित कदम।
हो फराखी दिल को हासिल, तब बशर जी शान है॥
जिसमें है मुहताजगी होगा जमाने में जलील।
काबिले रुतबा है जिसमें बढ़ने का अरमान है॥
गैर मुमकिन को करे मुमकिन बशर की यह सिफत।
आलमे इमकान में हर बात का इमकान है॥

पहिले शब्द की पहिली कड़ी में वह कहते है कि जितनी हरकतें

(गति) और सकनात (ठहराव) दुनियाँ में हैं सब में वह मालिक मौजूद है मगर यह विश्वास हो सकता है और कुछ नहीं।

दूसरी कड़ी नफी (नेति) और असबात (ऐति) क्या है। जो कहते हैं ऐति। कोई कहता है नेति। दाता का यह भाव है। जो अर्थ मैं समझता हूं वह इन दोनों में छुपा हुआ है।

अब मेरी समझ में यह नहीं आता कि ऐती (असबात) का विश्वास किसको आये ? कैसे आये ? कि वह हर जगह है। इसका कोई विश्वास होना चाहिये। किसी के कहने से तो कोई आदमी उस अवस्था में नहीं आ सकता। मैं स्वयं नहीं आया। इसलिये ऐसा कहता हूं। कह देने को तो सभी कहते हैं कि भगवान सब जगह है। मगर यह मान जाने से क्या वह जो उसके अन्दर कुरेद है या किसी वस्तु की खोज है क्या वह समान हो सकती है।

एक आदमी को यह विश्वास है कि वह शक्ति गति में भी है और ठहराव में भी है। ऐति में भी और नेति में भी है मगर क्या उसके अन्तर ठहराव आता है ? यह अमली पहलू (क्रियात्मक रूप) का सवाल है। जितने इस संसार में खुदा, ईश्वर, परमात्मा या गुरू के पुजारी हैं वह अपनी आत्मा से अन्तर दाखिल होकर पूछें। बीमारी आती है, कष्ट आता हैं। क्या कोई ऐसा आदमी है जो बीमारी की दशा में से बचना नहीं चाहता ? जब वह बचना चाहता है तो उसका अर्थ यह है कि वह बीमारी में भी जो वह परम शक्ति है उसका उसको विश्वास नहीं है मैंने अपने आपको संत सतगुरु कहा है– सत ज्ञान दाता। शायद मेरा दिमाग खराब हो। जो व्यक्ति उस मालिक को हर वस्तु में मानता है गति में मानता है ठहराव में मानता है, ऐति और नेति में मानता है मैं उससे यह पूछना चाहता हूं कि जब तुमको बीमारी आती है तो तुम दवा क्यों खाते हो ? तुम्हारा दवा का खाना यह प्रमाण है कि तुमको यह विश्वास नहीं है कि बीमारी में भी वह है। इसका अभिप्राय है कि

की भक्ति करने वाले हैं कि हर जगह परमात्मा है वह अमली पहलू (क्रियात्मक रूप) से गलत है। चोर जब डाका मारता है तो उस घर वाला चोरों का सामना करता है। यदि वह वह जगह मौजूद है तो चोर में भी वही हैं। इसी तरह पागल में भी वही है, साँप में भी वही है, शेर में भी वही है, तो वह उससे बचना क्यों चाहता है! दाता दयाल तो इस शब्द में कहते है कि वह हरकात (गति) और सकनात (ठहराव) में है। जब है ही वही तो जिसको यह निश्चय हो गया कि वही है तो शेर के सामने से भागेगा नहीं। जब बीमारी आयेगी तो इलाज नहीं करायेगा। यदि क्रियात्मक रूप से यह मानता है कि हर वस्तु में मालिक है, यह तो तर्क की बात है।

जर्रा जर्रा कतरा कतरा में, हुआ है वह मुहीत।
वह नफी में भी है पिनहाँ, जाहिर है वह असबात में॥
दूर से है दूर और नजदीक से है नजदीक तर।
तुम में हरकत उसकी, शामिल तुम्हारी बात में॥

अच्छा! यदि वह हमारी बात में शामिल है तो जब एक आदमी किसी का अपमान कर देता है, गाली देता है तो फिर उसे क्रोध क्यों आता है। मैं हूं रिसर्चर! मालिक को मिलने को निकला था। मालिक कहाँ है?

'हाँ 'नहीं' इन्कार और, इकरार तक में है वहीं।
जिसको देखो वह गुथा, रहता है उसके साथ में॥

यह ठीक है मगर यह जो समझ है कि वह हर जगह है उसको क्रियात्मक रूप में लाना सरल काम नहीं। जहाँ तक मेरा निजी अनुभव है और मैंने इन संतों को देखा हैं दाता दयाल, बाबा सावन-सिंह साहबजी महाराज तथा दूसरे महात्माओं को यह शिक्षा केवल मानव बुद्धि को केवल बुद्धिगत सन्तुष्टि देती है। यह शब्द बेदान्त पर है इसलिये मैं कहता हूं कि क्रियात्मक रूप (अमली पहलू) से

अधूरा है। तर्क वितर्क और बात है। जब किसी पर आपत्ति आ जाती है, दुख आ जाता है तो यह ज्ञान जो वेदान्त देता है यह क्रियात्मक रूप से शान्ति नहीं देता। जो मेरे लेख को पढ़े वह सोचे कि मैं गलत कहता हूं या ठीक कहता हूं। एक आदमी मानता है कि भगवान कण कण में है तो जब साँप आ जाता है तो भागता क्यों है। इसलिये यह वेदान्त के विचार मनुष्य को केवल बुद्धिगत सन्तुष्टि देते हैं। वह स्थान या अवस्था और है जहाँ जाकर इस संसार के भय, डर रोग से बचाव का अन्त होता है।

अल्क से और दिल से कब कोई पता पाने लगा।
लाख कोशिश करने पर भी आता नहीं है हाथ ॥

तो क्या सिद्ध हुआ ? यही कि बुद्धि से ऐसा मान लेना कि वह हर जगह में है, रहनी या क्रियात्मक रूप से मनुष्य को शान्ति या सन्तुष्टि नहीं दे सकता। दातादयाल ने लिख तो दिया मगर पीछे से बात सच्ची कहदी। फिर इसका इलाज ?

जो हुआ मुहताज गैरों का, वह कब इन्सान है।
वह है हैवानों से बदतर, क्योंकि वह नादान है ॥

उस अवस्था में मनुष्य को इन सब स्तुओं, ऐति नेति, गति और स्थिति, वह जो केन्द्र है वह पूर्ण है जिसको मनुष्य का असली रूप कहा जाता है, का अनुभव होता है। जब तक कोई आदमी अपने शरीर और मन के भाव बोध का दास है दूसरे शब्दों में जब तक वह शरीर और मन में है वह इनकी दासता से बच नहीं सकता। सम्भव है दातादयाल बच गये हों, हुजूर बाबा सावनसिंह, स्वामीजी महाराज बच गये हों, मुझे पता नहीं।

मेरे अनुभव में मनुष्य-शरीर में रहते हुये कौन संत या परमसंत है जिसको प्यास नहीं लगती और पानी का मुहताज (आश्रित) नहीं ? कौन संत या परमसंत है जिसके शरीर में दर्द हो और वह उससे

बचना नहीं चाहता। भूख लगती है। क्या वह रोटी खाने का आश्रित (मुहताज) नहीं है ? कोई अवतार भूख के बिना रहा हो, प्यास के बिना रहा हो तो मुझे बता दो। कोई रह नहीं सकता। इसलिये सन्तों का मार्ग है। जब तक कोई मन और आत्मा से परे नहीं चला जायगा, वह बिना आश्रित हुये या मुहताजगी के हो ही नहीं सकता। मैं ऐसा इसलिये कहता हूँ कि मैं नहीं हो सकता क्योंकि दूसरों को कहूंगा तो दूसरों को क्रोध आयेगा। इसलिये सन्तों के मार्ग में अभ्यास है, चौथे पद की शिक्षा है कि जब तक मनुष्य देह, मन और आत्मा से परे नहीं जाता वह इस परवशता से बच नहीं सकता। मनुष्य है भी वही, जिसको पूर्ण पुरुष कहा जाता है जो चौथे पद का बासी है। इसलिये सन्तों ने जीव को अपने घर जाने का पता दिया है—चौथे पद का। भाई ! यह शरीर, मन और आत्मा तीनों ही काल माया के चक्र में हैं। यहाँ तो परवशता (मुहताजगी) रहेगी। जब तुम इसमें हो, दुख सुख, भूक प्यास, से बच नहीं सकते। बड़े बड़े संत भी बच नहीं सके। तो संत मत की शिक्षा है चौथे पद की। जो चौथे पद में रहता है, जिसकी सुरत देह मन और आत्मा को छोड़ कर वहाँ जा सकती है, जब तक वह वहाँ है उस समय तक वह किसी वस्तु के आधीन नहीं है। यह मेरा अनुभव है। इतनी बात अवश्य हो सकती है कि जिसको ज्ञान है वह जो आवश्यकता उसके अन्दर शारीरिक, मानसिक या आत्मिक पैदा होती है उसके वश में आकर वह अधिक हाय हाय न करे, अधिक घबराये नहीं। यह मेरे साथ होता है। यदि कोई कहे कि शरीर में रहता हुआ मनुष्य इस आवश्यकता से बरी रह सकता है तो मुझ से तो रहा नहीं जाता और न मैं समझता हूं कि कोई महात्मा रहा हो। मैंने संतों के जीवन देखे हैं। हर जगह हाथी के दाँत खाने के और हैं तथा दिखाने के और हैं। पबलिक के सामने यह संत किसी और

रूप में प्रगट होते हैं और उनकी अपनी रहनी को वह आप जानते हैं।

मेरे अन्तर किसी वस्तु की कुरेद थी। ढूंढ़ता चला आ रहा हूं। सुबह अभ्यास में था। चूंकि तुम सत्संगियों से जब से पता लगा कि मेरा रूप तुम्हारी सहायता करता है और मैं होता नहीं, तो फिर उस असली मालिक को, उस असली स्वरूप को जो मन और बुद्धि से परे है, उसकी खोज करता हूं। वह कहां मिलता है? मन बुद्धि से परे। मन बुद्धि का सम्बन्ध दसवें द्वार तक है अथवा निर्विकल्प समाधि तक है। वह उससे आगे है। अब जो मेरा साधन है वह दसवें द्वार या सोहंग के आगे से शुरू होता है, नीचे की श्रेणियां जितनी थीं—सहस दल कंवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, यह सब मेरी छूट गईं। केवल इस ख्याल से कि मैं किसी के अन्तर नहीं जाता, मुझे विश्वास हो गया कि मेरे अन्तर भी जितने रूप प्रगट होते थे, वह, वह नहीं थे जो मैं समझता था। फिर असली मालिक की खोज में मैं रात दिन चलता रहता हूं और वह है शब्द और प्रकाश का भंडार। उसके परे है जिसको निज स्वरूप कहते हैं।

आदमी में आदमियत चाहिये यह है उसूल।
आदमियत से जो हो खाली, वह बेसरो सामान है।।

यह आदमियत या मनुष्यता क्या हुई? सच्ची समझ का नाम ही आदमियत है जो मैंने समझा है। मनुष्य कब बनता है मनुष्य, जब उसको यह ज्ञान हो जाता है कि जितने यह निचले दृश्य हैं यह सब काल और माया के हैं।

तुम बाबा फकीर का अपने अन्तर में रूप बनाते हो। तुम उसके मुहताज (आधीन) हो। यदि बाबा फकीर का रूप प्रगट हो गया तो तुम को खुशी मिल जाती है, यदि नहीं हुआ तो तुम दुखी हो जाते हो आज गुरु के रूप का दर्शन तुम्हें नहीं हुआ तो तुम उसके आधीन हो। आदमी नहीं हो, जब तक तुम्हारे अन्दर गुरु का रूप प्रगट नही होगा

तुम्हें शान्ति नहीं मिलेगी। तो यह जितने योगी, ध्यानी, कर्मकाण्डी हैं यह सब के सब मनुष्य नहीं हैं क्योंकि यह आश्रित हैं, अपनी शान्ति, अपने सुख और अपनी सन्तुष्टि के लिये कोई मन्दिर का मुहताज (आश्रित), कोई बाबा फकीर का मुहताज, कोई अजुध्या का, कोई मक्का शरीफ के आधीन है। तो सन्तों ने इस आधीनता को दूर करने के लिये हम लोगों को नाम दिया था। वह नाम अपना ही नाम है निज स्वरूप।

राधास्वामी निज स्वरूप।
गोता मार तन के कूप॥

बात बहुत ऊंची कह रहा हूं। क्या कोई मनुष्य है जो किसी के आधीन न हो। तुम स्वयं आधीन हो जो मेरे दर्शनों को आते हो। सोचते हो आज बाबा फकीर के दर्शन करेंगे कृतार्थ हो जायेंगे। मेरे दर्शनों से तुम को कुछ नहीं मिलेगा। यह तुम्हारा अपना ही विचार है। मेरे दर्शन से सब तर जाते तो कितने ही आदमी तर गये होते। दूसरी गद्दी वालों को देखो। वे जब मुझे देखते हैं तो उनको आग लग जाती है। उनको क्रोध क्यों आता! इसलिये सत्संग की महिमा है किसी पूर्ण पुरुष चौथे पद के वासी के सत्संग से तुम मनुष्य बनोगे। स्वतन्त्र बनाये जाओगे। फिर किसी की आधीनता में न रहोगे। कोई राम के आधीन, कोई कृष्ण के, कोई बाबा फकीर के, कोई मंदिर या मसजिद के कोई बुद्ध के, कोई गुरु नानक के आधीन। जब तक आधीनता है या दूसरे पर निर्भर हो, तब तक तुम को परम सुख या परम शान्ति नहीं मिल सकती।

उसमें हिम्मत हौसला हो, अज्म में कदम।
हो फराखी दिल को हासिल, तब बशर जी शान है॥

हिम्मत और हौसला—मैंने ७ वर्ष की आयु में अज्म या संकल्प किया था उस मालिक से मिलने का। बहुत से कष्ट सहे प्रयत्न चलता रहा। हिम्मत नहीं हारी। यह तो है परमार्थ। यह दशा

दुनिया की वस्तुओं की है। जो व्यक्ति दुनिया में साहस और इरादे से काम नहीं करता उसको दुनिया का भी सुख नहीं मिल सकता। दो मार्ग हैं—एक दुनिया का और एक परमार्थ का। मैं परमार्थ का अनुयायी हूं मगर युवा बच्चों को, दुनियादारों को परमार्थ की शिक्षा नहीं देता क्योंकि उनका अभी समय नहीं आया है। युवकों के लिये दाता दयाल की शिक्षा है साहस और संकल्प। I wish, I will, I can. यह शिक्षा दुनिया को मिलती है। स्कूलों में भी यही कहते हैं। जो व्यक्ति उत्साह से अपने सांसारिक जीवन को उच्च नहीं बना सकता वह परमार्थ को भी प्राप्त नहीं कर सकता। परमार्थ प्राप्त करने के लिये बड़े उत्साह और साहस की आवश्यकता है। शरीर और मन को छोड़कर दसवें द्वार या निर्विकल्प समाधि से आगे जाना सरल नहीं है। मनुष्य उस समय जायगा जब उसको मालिक से सच्चा प्रेम हो और सच्ची लगन हो।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
शीश काट पग तल धरे, तब बैठे घर माहिं॥

यह परमार्थ है मगर स्वार्थ में भी दाता दयाल के शब्द स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं :—

उसमें हिम्मत हौसला हो, अज्म में साबित कदम।
हो फराखी दिल हो हासिल, तब बखर जी ज्ञान है॥

दुनिया के कामों में संकल्प, साहस और उत्साह की आवश्यकता है। दुनिया के कामों में जब ही तुम सफल हो सकते हो, स्कूल में पढ़ते हो तो इरादे और साहस से काम लो। मैं परमार्थ की ओर गया हूं। दुनिया के कामों में भी मैंने इरादे और हिम्मत से काम किया है। मेरा सांसारिक जीवन बड़ा सफल रहा है। मेरे पास चर्चिल (मुख्य मंत्री इगलैंड) के सर्टीफिकेट हैं और किंग जार्ज के सर्टीफिकेट हैं और रेलवे की नौकरी के समय के वायसराय के सर्टीफिकेट हैं।

क्यों ? क्योंकि मैंने उत्साह, साहस और इरादे से काम किया है। यह तो दुनिया है। परमार्थ में देह, मन की परवाह न करके केवल अपने घर, अपने आदि घर को ढूंढने के लिये निकला था। साहस था उत्साह था।

जिसमें है मुहताजगी होगा जमाने में जलील।
काबिले रुतबा है जिसमें बढ़ने का अरमान है॥

अब तुम देखो कि जिनको परमार्थ की मुहताजगी (आधीनता है, गुरु की बात को तो समझा नहीं, वे जीवन भर गुरु के दरबार में जाकर नाक रिगड़ते मर गये। गुरु महाराज से आगे साष्टांग दण्डवत करते रहे। किसी के आश्रित होना क्या यह अपमानित होना नहीं है। लम्बे पड़ के गुरु को मत्था टेका क्या गुरु की पूजा नहीं है। गुरु की सेवा है गुरु की बात को सुनना, गुनना, मनन करना और उस पर अमल करना। अब यहाँ भी नमस्ते करते हैं। कोई सत श्री अकाल कहता है। अंग्रेज और तरह से सम्मान करते हैं। जर्मनी वाले किसी और तरह से ध्वजा का सम्मान करते हैं। यह अपने अपने रस्म और रिवाज हैं। एक तो परमार्थ में अपमानित होना है, एक दुनिया में अपमानित होना है। तुम नौजवान बच्चे हो। तुम्हारे हाथ पांव हैं। स्वयं नहीं कमाते। बाप या भाई पर निर्भर हो। फिर तुम अपमानित नहीं होते तो क्या होते हो ? एक उदाहरण देता हूं—

जब मैं निर्माण (Construction) लाइन से वापिस आया तो गवर्नमेंट सर्विस के लिये प्रार्थना पत्र भेजा हुआ था। दशहरा आ गया। मुझ को भी भक्ति का शौक था। तो यह भावना उठी कि मैं भी चार आने के फूल लेकर राम के गले में यानी जो राम का भेष बनता है, उसको फूल चढ़ाऊं और चार आने से मत्था टेकूंगा। मैं घर आया बड़े चाव से। मैंने कहा—माँ ! माँ !! अठन्नी देदो। उसने [illegible] ! मेरे पास तो है नहीं, तेरे पिताजी आवेंगे, ले लेना।

जब पिताजी आ गये। मैंने बड़े चाव से कहा—बाबा जी ! अठन्नी दे दो। उन्होंने कहा क्या करोगे। मैंने कहा कि चार आने के फूल चढ़ाऊंगा और चार आना भेंट दूंगा। कहने लगे दो पैसे ले जा बच्चा। एक पैसे से मत्था टेक देना और एक पैसे के फूल चढ़ा देना। मैंने कहा मैं तो आठ आना लूंगा। पिताजी गाली देकर बोले कि तेरी स्त्री बीमार पड़ी है। फिरता है मुसंडा। न काम करता है न काज करता है। पैसे मांगता है। जा, चला जा। मेरे पास पैसे नहीं हैं। कहाँ से लाऊं। उनके शब्दों ने मेरे हृदय को चोट पहुँचाई। मैंने कहा घर से निकल जाऊंगा। पिंड दादन खाँ का बड़े कोट में मकान था। कोठे पर सीढ़ियों पर बढ़ा छलांग मार देता। माँ बाप दौड़े आये। मुझे पकड़ ले गये। पिताजी ने कहा—बच्चा ! मैंने सच्ची बात कही। तेरी स्त्री बीमार है इसका इलाज कराता हूं। मेरे पास पैसा नहीं है। यह ले रुपया ले जा। मैंने कहा कि मैं नहीं लूंगा।

मेरी स्त्री श्री रामरिखी वह बीमार थी। पांव में नासूर था। उसने मुझे बुलाया। बोली मैंने ४०) रुपये के पैसे इकट्ठा करके रक्खे हुये हैं। मेरी सन्दूक में पड़े है। यह लो चाबी। जितने चाहो ले जाओ। मैंने कहा मैं नहीं लूंगा।

मेरे पास एक पुस्तक (Character by Smile) थी। जिसका लेखक इस्माइल था वह १.२५ रु० को मैंने खरीदी थी। वह आधे दामों पर बेच दी। चार आने राम के भेंट चढ़ाये और चार आने के हार चढ़ाये। जब दशहरा सम्पन्न होने पर रावण को आग लग गई, शाम को जब घर आया तो रास्ते में गली पड़ती थी। वहाँ मुझे कोई नहीं देखता था। वहाँ जमीन पर दोनों घोंटू टेक कर कहा—"हे राम ! मुझको जीवन में किसी के आगे हाथ फैलाने का

देना।" आज दिन तक जीवन बीत गया। मैंने बाप की कमाई नहीं खाई। मकान है जमीन पड़ी है। उसका किराया दस रुपये आता है। मैं नहीं लेता। मुंशीराम को दे देता हूं यह है स्वाभिमान! जहाँ मेरी शिक्षा अध्यात्मक है वहां युवक वर्ग को शिक्षा देना चाहता हूं कि ऐ युवको! दुनिया में अपमानित होने की आवश्यकता नही है। अपने पांव पर खड़े होकर अपनी रोटी आप कमाने का आप प्रबन्ध करो। थोड़ी आमदनी है तो थोड़े में गुजारा करो। बहुत है तो बहुत में गुजर करो। अपमानित या जलील मत हो। परमार्थ की दृष्टि से भी गुरु के आगे टें टें मत करो। गुरू के सत्संग में बैठकर गुरू की सेवा यही है कि गुरू की बात को सुनो, समझो और गुनो। स्वामी जी का कथन है :—

दर्शन करे बचन पुनि सुने।
सुन सुन कर नित मन में गुने॥
गुन गुन काढ़ि लेय तिस सारा।
काढ़ि सार तस करे अहारा॥

जलील बनना ठीक नहीं है। मैं जीवन में सांसारिक दृष्टि से जलील नहीं बना। जब ज्ञान नहीं था तब दूसरे ढंग से दातादयाल से प्रेम करता था। यह ज्ञान सन १९१९ से हुआ हैं। सन १९१९ के बाद मैंने दाता दयाल की सेवा की, यहां तक कि अपनी स्त्री के जेवर भी बेच कर वहां लगा दिये। उसी मुझे खुशी है मगर वह जलालत नहीं थी। वह उनका अहसान था। यह है शिक्षा दाता दयाल की।

गैर मुमकिन को करे मुमकिन बशर की यह सिफत।
आलमे इमकान में हर बात का इमकान हैं॥

।। मनुष्य बनो ।।

मनुष्य असम्भव को सम्भव बना देता है। चन्द्रमा पर चढ़ गया। ऋषियों के जो ग्रन्थ लिखे हुये थे वह मिथ्या (Condemn) हो गये। यह मनुष्य का गुण है। ऐटम बम बन गये। दो बम फेंक दो। सारा भारत नष्ट हो जायगा। यदि यही मनुष्य बजाय विनाश के अपने विचार उपयोगी कार्यों की ओर ले जाय तो यही बुद्धिमान मनुष्य दुनिया में शान्ति ला सकते हैं मगर यह लाते नहीं। क्यों नहीं? क्योंकि इनको गुरू नहीं मिला। गलत रास्ता ग्रहण कर रहे हैं। मैं इसी दृष्टि से काम करता हूं। मैंने मानवता मन्दिर की नींव रक्खी वह केन्द्र है। नई चीज पैदा की। एक काम एक सौदा सिर पर लिया। बस उसको निबाह जाना चाहता हूं। पीछे मेरे काम का क्या परिणाम निकले इसका पता नहीं है मगर मैंने इन्सानियत से काम लिया है। आज सत्संग था मनुष्य की श्रेष्टता पर। जो मनुष्य ईश्वर के भी आधीन है वह मनुष्य नहीं है।

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।
कर विचार देखउ मन माहीं।।

पराधीन होना ठीक नहीं। भारत भूषण! तुम युवक हो, इरादा रक्खो। दाता दयाल कहा करते थे पहिले ब्रह्म बनो अर्थात बढ़ो। जिसने दुनिया की उन्नति नहीं की वह आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता। एक बात कहे देता हूं कि आत्मिक उन्नति में मन को वश में करना है जो बहुत कठिन संकल्प है। दुनिया उन्नति जो है संकल्प है बस यही संदेश है।

—०—

"मनुष्य बनो" (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र (केन्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

१—प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
२—प्रकाशन अवधि	:	मासिक
३—मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
क—राष्ट्रीयता	:	भारतीय
ख—पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
४—प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
५—सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़ ।
६—स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द जी महाराज

७— मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है।

दिनांक १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल

प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. NO L—ALG.28

मिलने का पता :—
'मनुष्य बनो' कार्यालय
शिव भवन, लेखराज नगर
अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

अवैतनिक सहायक सम्पादक
महेशचन्द्र मीतल
सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक
श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या— 170.

श्रीमान Chilwar Narsimhlu Book Seller
V+P.O. Banswada Mandal
Nijamabad. AP.
503187

क : श्रीमती सुधा मीतल, दातादयाल प्रिंटर्स, लेखराज नगर, अलीगढ़